ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. NO.- 277-280

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-III, Issues-18, YEAR- Dec. -2020

उत्तर–वैदिक काल में स्त्री

आशीष चन्द दीक्षित Email : amicfazilnagar@gmail.com

Received- 28.06.2020, Revised- 01.07.2020, Accepted - 04.07.2020

सारांश– ***यदि किसी सभ्यता या संस्कृति के विचारों, धारणाओं अथवा भावनाओं या मानसिक व सांस्कृतिक स्तर का मूल्यांकन करना हो तो यह आवश्यक है कि उस संस्कृति की स्त्रियों की दशा पर दृष्टिपात किया जाए या प्रथमतः उस संस्कृति या सभ्यता की स्त्रियों की सामाजिक या मानसिक स्थिति का मूल्यांकन किया जाए। किसी भी संस्कृति या सभ्यता में स्त्री उस संस्कृति के दर्पण के रूप में परिलक्षित है जो की कालांतर में उस सभ्यता या संस्कृति के वास्तविक प्रतिबिम्ब को प्रदर्शित करती है तथा उस आधार पर उस संस्कृति या सभ्यता का मूल्यांकन किया जाता है।***

कुंजीभूत शब्द–सभ्यता, संस्कृति, धारणाओं, मानसिक, मूल्यांकन।

शोध अध्येता– मानविकी विभाग, सनराइल विश्वविद्यालय,अलवर, (राजस्थान) भारत

अनुरूपी लेखक

आदिकाल से मानव जीवन की इस विराट यात्रा में स्त्री उस वट वृक्ष की तरह है जिसने न जाने कितनी ही ऋतुएं देखी हैं तथा अपने सम्मुख आने वाले बहुत से जीवों को आश्रय दिया है तथा अपनी शाखाएं फैलाकर संस्कृतियों का विकास किया है। स्त्री की उपमा एक नदी की भांति है जिसने अपने इस अविरल यात्रा में न जाने कितने अवरोधों का सामना किया है, उसने दुःखों के पर्वत भी देखे हैं तथा गिरते सामाजिक मूल्यों तथा समाप्त होते अधिकारों के गर्त भी देखे हैं। इसके साथ ही इस नदी नें अपनी यात्रा में उत्तम सामाजिक स्थिति के रूप में हरे–भरे समतल मैदान भी देखे हैं और आज भी यह नदी रूपी स्त्री अपने अविरल और निरंतर चलने वाली इस यात्रा में संलिप्त है।

स्त्रियों की सामाजिक स्थिति व अधिकार प्रत्येक काल में समान रूप से प्राप्त नही होत रहे हैं। किसी काल में इनकी स्थिति उत्तम रही है तो किसी काल में बहुत ही दयनीय दिखाई देती है। इनके जीवन व संस्कृति में उतार–चढ़ाव लगभग प्रत्येक कालखण्ड में देखने को मिलता है। कभी–कभी इन्हे देवीयों की तरह पूज्यनीय माना गया है तो कभी–कभी इनके जन्म पर शोक व्यक्त किया गया है। सैंधव काल जैसे कालखण्डों में तो इनकी स्थिति अत्यंत सुदृढ़ प्रतीत होती है, जिसमे मातृदेवी के रूप में स्त्री का पूजन, सुन्दर नर्तकी प्रतिमा एवं श्रृंगार–प्रसाधन के अन्य वस्तुओं की प्राप्ति इस बात की पुष्टि करते हैं। उत्खननों से प्राप्त आभूषण एवं श्रृंगार–प्रसाधन की वस्तुएं इस बात का स्पष्ट संकेत करती हैं कि सैंधव काल में स्त्री एक अच्छी स्थिति में रही होगी।

वैदिक काल का परिवार एक पितृसत्तात्मक परिवार था परन्तु इसका अर्थ यह कदापि नही है कि स्त्री की स्थिति पुरूषों की अपेक्षा खराब थी। बौद्धिक, आध्यात्मिक व सामाजिक जीवन में स्त्रियों को भी वही स्थान प्राप्त था जो कि पुरूषों को। सामाजिक कृत्यों व धार्मिक अनुष्ठानों में स्त्री पुरूष के साथ–साथ आसन ग्रहण करती थी। परिवार में पुत्री का जन्म लेना उतने ही हर्ष की बात थी जितना कि एक पुत्र का जन्म लेना। पुत्र व पुत्री के मध्य कोई भी सामाजिक विभेद ज्ञात नही होता है दोनो ही समान प्रतिष्ठा व समान प्रेम व स्नेह के अधिकारी थे। बाल–विवाह, पर्दा–प्रथा, सती–प्रथा इत्यादि सामाजिक कुरीतियो का सर्वथा लोप दिखाई देता है तथा समाज मे इनका कोई भी स्थान परिलक्षित नही होता है।

उत्तर वैदिक काल में स्त्रियों की दशा में हमे एक ह्रास दिखाई देता है। इस काल तक यह ज्ञात होने लगता है कि स्त्रियों की दशा अब पूर्व रूप से उस प्रकार नही रह गयी थी जिस प्रकार की हमे वैदिक काल में दिखाई देती है। एक ओर जहां वैदिक काल में इन्हे असिमित अधिकार प्राप्त थे वही अब उत्तर वैदिक काल में इनके अधिकारों का सीमांकन देखने को मिलता है। जैसा कि वैदिक काल में पुत्र व पुत्री के मध्य सामाजिक व पारिवारिक विभेद नही था वह व्यवस्था उत्तर वैदिक काल में समाप्तप्राय दिखाई देती है। उत्तर वैदिक काल में परिवार में पुत्र के जन्म को उत्सव के रूप में देखा जाने लगा तथा पुत्रियों का जन्म अब सर्वथा शोक माना जाने लगा। सामाजिक स्तर पर पुत्र को वंश का रक्षक मान लिया गया तथा पुत्रियों को कष्ट व दुःख के स्त्रोत के रूप में स्वीकार किया गया। अब पुत्री का जन्म एक शोक के रूप में ग्रहण किया जाने लगा था। अत्रैय ब्राह्मण के एक उद्धरण में पुत्री के जन्म को परिवार के

PIF-7.500 *ASVS Reg. No. AZM 561/2013-14*

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-III, Issues-18, YEAR- Dec. -2020

लिए कष्ट और दुःख का स्त्रोत माना गया है– सखा ह जाया कृपणंति दुहिता पुत्रः परमे व्योमन – अत्रेय ब्राह्मण, 18. सामाजिक स्थिति के ह्रास के बाद भी स्त्रियों की धार्मिक स्थिति कुछ एक बदलावों के साथ उसी प्रकार बनी रही जैसी की वैदिक काल में थी। स्त्रियां अभी भी धार्मिक अनुष्ठानों में एक आवश्यक अंग थीं हालांकि कुछ संस्कार जो पहले स्त्रियों द्वारा किये जाते थे वे अब पुरोहितों द्वारा किये जाने लगे थे, फिर भी उन्हे धार्मिक कार्यों से पूर्णरूपेण बाहर नही किया गया था। महाभारत व रामायण काल में भी स्त्रियों की दशा उन्नत अवस्था में देखने को मिलती है। स्त्रियों की नैतिकता व आदर्श श्रेष्ठ थे समाज में स्त्री का स्थान ऊचा था तथा उन्हे पूज्यनीय समझा जाता था। महाभारत के आदि पर्व में वर्णित है कि माता के रूप में एक स्त्री का स्थान गुरू से भी श्रेष्ठ था–

गुरूणां चैव सर्वेषां माता परम को गुरूः –महाभारत, आदि पर्व 159–11.

इसके साथ ही एक पत्नी या अर्द्धांगिनी के रूप में भी एक स्त्री का स्थान पूज्यनीय तथा दर्शनीय था। पत्नी को एक गृहणी के रूप में सभी सुखों का स्त्रोत माना जाता था तथा पुरूष को उसके विना अधूरा समझा जाता था। इस काल में स्त्री का पतिव्रत धर्म, उसका त्याग और उसका सतीत्व उच्च कोटि का था जिसके उदाहरण महाकाव्यों में सुभद्रा व उर्मिला के रूप में विद्यमान हैं।

मौर्य काल में भी स्त्रियों की दशा उत्तम थी तथा समाज में उन्हें एक प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त था। समाज में उनका आदर व सम्मान किया जाता था।

अधिकांश स्त्रियों को मौर्य काल में गृहकार्यों में ही संलिप्त पाया जाता है। इनकी सामाजिक व धार्मिक हिस्सेदारी अब धीरे–धीरे घरों में सीमित दिखाई देती है। ज्यादातर ऐसे उदाहरण प्राप्त होते हैं जिनमें इन्हे गृहस्थ जीवन में व्यस्त देखा जा सकता है। सामान्यतया सामाजिक जीवन सुखी था तथा स्त्रियां धार्मिक कार्यो में पुरूषों के साथ होती थीं। धार्मिक कार्यो में दर्शन व दान करने का अधिकार प्रायः स्त्रियों को प्राप्त था। धार्मिक समारोहो में पुरूषों के साथ बराबरी का अधिकार प्राप्त था। समाज में पर्दा प्रथा का आभाव सा दिखाई देता है। सामान्यतया स्त्रियों पर ज्यादा प्रतिबन्ध नही थे तथा वे पुरूषों के समक्ष आ सकती थीं। पर्दा का प्रचलन उतना कठोर प्रतीत नही होता है। कुछ जातकों में वर्णन प्राप्त होता है कि रानियां ढ़की हुई गाड़ियों या रथों पर जाती थीं परन्तु कुछ जातक ग्रंथों में यह भी उल्लेख है कि रानियां विना किसी प्रतिबन्ध के भ्रमण करती थीं। धम्मपाद की टीका में यह उल्लेख है कि–"जब स्त्रियां बाहर यात्रा पर जाती थीं, तब वे अपने मुख मण्डल को ढ़की रहती थीं और विवाह योग्य कन्याओं को विना किसी रोक–टोक के पुरूष सेवकों के सम्मुख नही आने दिया जाता था।" –धम्मपाद भाग–1 पृ0 391, भाग–2 पृ0217, भाग–3 पृ024 एक अन्य विवरण के अनुसार कुछ सीमित राजवंशों में 300ई0 के बाद यह प्रथा प्रारम्भ कर दी गयी कि जब राजवंश की स्त्रियां जनसाधारण के सम्मुख जाएं तो वे अपने मुखमण्डल पर अवगुण्ठन रखें तथा अपने मुखमण्डल को ढ़क लें तथा यह प्रथा सभी राजवंशों द्वारा अपनायी जाने लगी। ई0पू0 के काल तथा ई0 के बाद के काल में भी मूर्तियों में पर्दा का सवर्था आभाव सा दिखाई देता है। सांची व भरहूत के तोरणों पर न जाने ऐसे कितने ही दृश्य उत्कीर्ण हैं जिनमें सामान्य जनजीवन से लेकर राजकीय परिवारों को दर्शाया गया है। सड़क पर जाते हुए जुलूस तथा अपने घर की बालकनी से झांकती हुई स्त्रियों का चित्रण बहुतायत में देखा जा सकता है। इसके साथ ही अजंता व बाघ की गुफाओं में बहुत से स्त्री पुरूषों के सामूहिक झुण्डों को सडको पर जाते अथवा मंदिर में पूजन करते या समारोहों व उत्सवों में प्रतिभाग करते चित्रित किया गया है तथा इन सभी में स्त्रियों के मुखमण्डल पर पर्दा का आभाव दिखाई देता है। कही भी स्त्री को अपना मुख ढ़के नही दिखाया गया है। जहां भी उनका अंकन किया गया है वहां उनका मुख मण्डल खुला हुआ है।

मूर्तियों में स्त्रियों के मुख मण्डल पर पर्दा का आभाव तथा उनके स्वच्छन्द चित्रण का तात्पर्य यह कदापि नही है कि स्त्री समाज में निरंकुश थी तथा उसके उपर कोई रोक–टोक नही था। स्त्री का स्वच्छन्द विचरण तथा उसकी सामाजिक अविरलता उसी विन्दु तक सीमित थी जहां तक की वह परिवार, समाज अथवा अपने कुल की मर्यादा व उनकी प्रतिष्ठा का हनन न करती हो। सामाजिक शीलता के बाहर जाने पर उनके लिए दण्ड का भी विधान था तथा यह मात्र इनकी निरंकुशता को रोकने हेतु था। साहित्य में विभिन्न ऐसे उदाहरण प्राप्त होते है जिनमें यह स्पष्ट होता है कि यदि स्त्री द्वारा अपने परिवार, समाज या कुल की मर्यादा अथवा कुलीनता का हनन किया जा रहा हो तो उसे दण्डित किया जाना भी अनिवार्य था, जिससे की उसकी शीलता बनी रहे तथा उसे अपनी मर्यादा का ध्यान रहे। उच्च श्रेणी की स्त्रियां पुरूषों ो दूर रखी जाती थीं। 'अर्थशास्त्र' में दुराचारिणी पत्नी को दण्ड देने के लिए अत्यधिक कठोर नियमों का प्रावधान है। अर्थशास्त्र के विवरण के अनुसार एक स्त्री जो अपने पति की इच्छा के प्रतिकूल धृष्टतापूर्वक कीडा में भाग लेती है अथवा मदिरापान करती है तो उसके लिए 3 पण के अर्थदण्ड का प्रावधान है। यदि वह विना अपने पति के आज्ञा के किसी दूसरी स्त्री से भेंट करने उसके घर जाती है तो ऐसी दशा में उस पर 6 पण के अर्थदण्ड का प्रावधान है, जबकि यदि वह किसी पुरूष से भेंट करने जाती है तो यह राशि दोगुनी हो जाएगी तथा उसे 12 पण का अर्थदण्ड देय होगा। यदि वह स्त्री पुरूष

PIF-7.500 *ASVS Reg. No. AZM 561/2013-14*

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-III, Issues-18, YEAR- Dec. -2020

से भेंट करने हेतु रात्रि के समय जाती है तब यह अर्थदण्ड दोगुना होकर 24 पण हो जाएगा। यदि किसी स्त्री का पति सोया हुआ है अथवा मदिरापान किये हुए है तथा ऐसी स्थिति में यदि स्त्री अपने गृह का त्याग करती है तो ऐसी स्त्री पर 12 पण के अर्थदण्ड का प्रावधान है। एक स्त्री के द्वारा किसी पुरूष के साथ एकांत में हास–परिहास में लिप्त होने तथा परस्पर कामोद्दीपक संकेत करने पर स्त्री के लिए 24 पण के अर्थदण्ड का प्रावधान है। यदि वार्तालाप किसी संदिग्ध स्थान पर हो रहा हो तो पण के स्थान पर कोड़ों का प्रावधान था तथा ग्राम के चौराहे पर चाण्डाल द्वारा स्त्री के शरीर के दोनो ओर पांच–पांच कोड़े लगाये जाते थे।

सामान्य पारिवारिक जीवन के साथ–साथ पर्दे का प्रावधान स्त्रियों के जीविकोपार्जन में भी परिलक्षित होता है। जीविकोपार्जन हेतु स्त्रियों द्वारा कार्य किये जाने के उदाहरण हमें मौर्य काल में स्पष्टतः प्राप्त होते हैं जिसमें बुनाई विभाग के अधिक्षक को राजा द्वारा दिये गये एक आदेश में कहा गया है कि राजसी कताई–बुनाई संस्थानों में भिन्न–भिन्न संस्थाओं में भिन्न–भिन्न वर्गों की उन निर्धन स्त्रियों की नियुक्ति की जाए जिसमें विधवा, अनाथ, भिखारिणी, वे स्त्रियां जो अर्थदण्ड देने में असमर्थ रहने के कारण कार्य करने के लिए बाध्य की गयी हों तथा बीती हुई अवस्था की वेश्याएं सम्मलित हों। सामान्यतया इसमें निम्न वर्ग की स्त्रियों को सम्मलित किया जाता था परन्तु संभव है कि कभी–कभी उच्च वर्ग की स्त्रियां भी जीविकोपार्जन हेतु बाध्य होती थीं। यदि इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न होती थी जिसमें किसी उच्च वर्ग की स्त्री जीविकोपार्जन हेतु विवश थी तो उसके साथ भिन्न व्यवहार किया जाता था। सूत ले आने तथा वस्त्र देने में उसे विशेष सावधानी का ध्यान रखना होता था तथा ज्यादातर यह आशा की जाती थी कि वे अपने लिए सेविका रखे तथा सूत ले आने व वस्त्र ले जाने का कार्य उसी सेविका द्वारा संपादित किया जाए तथा यदि वह सेविका रखने में असमर्थ है तो वह स्वयं अपने कार्यो का संपादन करे तथा उसमे विशेष सावधानी रखे। जैसे जब वह बुनाई के लिए जाए तो वह प्रातः उस समय जाए जब प्रकाश धूमिल हो अर्थात उसे आसानी से देखा न जा सके। वस्त्र सामग्री प्राप्तकर्ता अधिकारी केवल उसके वस्तुओं के निरीक्षण हेतु दीपक का प्रयोग करे। यदि वह उसके मुख को देखता है अथवा कार्य के अतिरिक्त अन्य विषयों पर वार्तालाप करता है तो उस पर 90 पण का अर्थदण्ड लगाया जाना चाहिए। स्पष्ट है कि उच्च वर्ग की स्त्री यद्यपि विना पर्दे के होती थी फिर भी उसे परपुरूष द्वारा सामान्यतया नही देखा जा सकता था।

बुनाई के साथ–साथ स्त्रियां अन्य कार्यों जैसे कृषि, पशुपालन, युद्ध सामग्री बनाने, धनुष–बाण बनाने इत्यादि में भी योगदान प्रदान करती थीं। वैदिक संहिताओं में रंगने के कार्य, कसीदे के कार्य व टोकरी बुनने के कार्य करने वाली स्त्रियों के संदर्भ प्राप्त हैं। कुछ विदूषी स्त्रियां अध्यापन का कार्य भी करती थीं जिन्हे 'आचार्या' कहा जाता था। याज्ञवल्क स्मृति से ज्ञात होता है कि स्त्रियां अपने पति के साख के आधार पर उनकी ओर से व्यापार कर लेती थीं और लेन–देन के समझौते कर लेती थीं। गायन, वादन व नृत्य में प्रवीण स्त्रियों के भी अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं। कुछ स्त्रियां राज सभाओं में नृत्यांगना के रूप में भी नियुक्त थीं तथा अपनी सुंदरता, शारीरिक सौष्ठव आदि के कारण ये बहुत ही प्रसिद्ध हुआ करती थीं। बुद्धकाल में वैशाली की नगरवधु आम्रपाली तथा राजगृह की शीलवती को उदाहरण स्वरूप देखा जा सकता है। तीसरी शताब्दि में राज प्रासादों के अतिरिक्त देव स्थानों में भी नृत्यांगनाओं के उदाहरण प्राप्त होते हैं, जो पूजन–अर्चन के समय नृत्य करती व गाती थीं। कालिदास ने मेघदूत मे भी इसका वर्णन किया है। सातवीं सदी में ह्वेन–सांग ने भी मुल्तान के सूर्य मंदिर में अनेक नृत्यांगनाओं को देखा था। राजतरंगिणी में भी अनेक नृत्यांगनाओं का संदर्भ है। ऐसा कहा जाता है कि सोमनाथ के मंदिर में 500 नृत्यांगनाएं थीं।

व्यवसाय के साथ–साथ स्त्रियों को अपनी सम्पत्ति रखने व उसका संवर्धन करने के अधिकार भी प्राप्त होते थे। वैदिक युग व महाकाव्य युग में स्त्रियां अपने पति पर निर्भर थीं। ऋगवेद में उदाहरण प्राप्त होता है कि एक व्यक्ति ने जुए में अपनी पत्नी को दांव पर लगा दिया। महाभारत मे युधिष्ठिर का उदाहरण भी इसी श्रेणी में है परन्तु पहली शताब्दि के बाद के धर्मग्रंथों जैसे याज्ञवल्क स्मिृति में उदाहरण प्राप्त होता है कि स्त्रियां और बच्चे न तो दान दिये जा सकते हैं और न बेचे जा सकते हैं–

''स्वं कुटुम्बावरोषेन देयं दार सुतादूते''
–याज्ञवल्क स्मिृति 2, 175.

चूंकि पारिवारिक, सामाजिक व धार्मिक क्रिया–कलापों के प्रतिपादन में पत्नी बराबर की भागीदार थी तथा उसके विना इसका संपादन संभव नही था तो बहुत हद तक या माना जा सकता है कि उसका पारिवारिक सम्पत्ति में भी बराबर का अधिकार रहा हो। इसके साथ ही विवाह में समय या दहेज में प्राप्त आभूषणों, वस्त्रों, उपहारों व सामग्री तथा धनराशि पर स्त्रीधन के रूप में स्त्रियों का अधिकार था तथा विवाह के उपरांत पति से प्राप्त उपहारों व धन को भी इसी श्रेणी में रखा जाता था। मनुस्मृति में भी स्त्रीधन पर उस स्त्री के अधिकार को स्वीकार किया गया है तथा वह अपनी इच्छा से इसमें से दान इत्यादि कर सकती है–

अध्यग्न्यध्या वहनि कं दत्तं च प्रति कमणि
भातृमातृपितृ प्राप्तं षड्विधं स्त्रीधनं स्मृतम्
–मनुस्मृति 9, 194

इसके साथ ही याज्ञवल्क स्मृति व देवल स्मृति में भी स्त्रीधन को मान्यता प्रदान की गयी है।

PIF-7.500 *ASVS Reg. No. AZM 561/2013-14*

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-III, Issues-18, YEAR- Dec. -2020

कालांतर में 11वीं व 12वीं शताब्दि में स्त्रियों की दशा गिर गयी। स्त्री से यह आशा की जाती थी कि वह अपने पति को देवता के समान समझकर उसकी सेवा करे तथा उसे सुखी बनाने की व्यवस्था करे। व्रत उपवासों में पति का साथ दे, उत्सवों, सामाजिक कार्यों और धार्मिक जुलूसों में पति की आज्ञा प्राप्त कर के जाए और उसी मनोरंजन में भाग ले जो पति को पसन्द व प्रिय हो। धीरे–धीरे यह मत भी प्रतिपादित होने लगा कि स्त्री को सदा परपंत्र व परावलम्बी होना चाहिए। उसे अपने दुष्चरित्र पति की भी सेवा करनी चाहिए, पति भक्ति उसके जीवन का धर्म है। सम्पन्न परिवारों में वहुपत्नीत्व के कारण एक ही परिवार में अनेक पत्नीयां होती थीं, जिनकर जीवन बाहर से तो सुख सुविधा से भरा हुआ प्रतीत होता था परन्तु आंतरिक रूप से वे दुखी जीवन व्यतीत करती थीं। दुष्ट, असंयमी, बन्धया और निरंतर कन्या उत्पन्न करने वाली स्त्रियों को प्रायः सौत या रखैल का सामना करना पडता था। पत्नी पर पति की प्रभुता सर्वतोन्मुखी मानी जाती थी जिससे स्त्रियों के अधिकार निरंतर कम होते गये।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. बाशम, ए0एल0 : अद्भुत भारत (अनु0), शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी आगरा।
2. लुणिया, बी0एन0 : प्राचीन भारतीय संस्कृति, लक्ष्मी नरायण अग्रवाल आगरा, 2010–11.
3. गैरोला वाचस्पति : भारतीय संस्कृति व कला, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ, 2006।
4. उपाध्याय गंगाप्रसाद : वैदिक कल्चर, 1972.

*****